जनसत्ता

इसरो की उपलब्धि

पिछले कुछ सालों में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) और भारतीय रक्षा अनुसंधान संगठन (डीआरडीओ) ने साझा प्रयासों से देश की सुरक्षा को मजबूत करने की दिशा में बड़े काम किए हैं। हाल में अंतरिक्ष में उपग्रह को मार गिराने जैसा सफल परीक्षण करके भारत दुनिया की चंद बड़ी ताकतों में शामिल हो गया। जाहिर है, देश की सुरक्षा के लिए अब आकाश से भी कड़ी नजर रहेगी। सोमवार को इसरो ने अंतरिक्ष में धरती से करीब आठ सौ किलोमीटर ऊपर एक और सैन्य उपग्रह- एमीसैट तैनात कर दिया। इस उपग्रह को भी इसरो और डीआरडीओ ने मिल कर बनाया है। यह उपग्रह भारतीय सीमाओं की निगरानी करेगा, खासतौर से पाकिस्तान के साथ लगने वाली भारत की सीमा पर पल-पल की गतिविधियों पर भी नजर रखेगा। छोटी से छोटी इलेक्ट्रॉनिक और मानवीय गतिविधियां भी इसकी नजरों से बच नहीं पाएंगी। दरअसल, पाकिस्तान जिस तरह से भारत के लिए खतरा बना हुआ है और सीमापार से भारत विरोधी कार्रवाइयां जारी रखे हुए है, ऐसे में एमीसैट से उसकी गतिविधियों के बारे में सूचनाएं मिल सकेंगी। एमीसैट की बड़ी खूबी यह है कि दुश्मन देशों की राडार प्रणाली भी इसकी नजर से बच नहीं पाएगी और वह कहां से काम कर रही है, इसका भी पता चल सकेगा।

कई बार ऐसा हुआ है जब दुश्मन के इरादों की जानकारी सही वक्त पर नहीं मिलने की वजह से भारत की सेना को काफी नुकसान उठाना पड़ा है और आतंकी हमले झेलने पड़े हैं। लेकिन अब एमीसैट की मदद से दुश्मन की ऐसी कोशिशों को नाकाम करने में काफी हद तक मदद मिल सकेगी। पिछले साल भी भारत ने सैन्य और संचार उपयोग के लिए जीसेट-6ए उपग्रह पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया था। इस उपग्रह का मकसद भी दुश्मनों के ठिकानों की सटीक जानकारी हासिल करना है। एमीसैट से मिलने वाले आंकड़ों से वैसे ठिकानों के नक्शे तैयार किए जा सकेंगे, ताकि लक्षित कार्रवाई में जरा भी चूक न रहे। इन उपग्रहों से मिले आंकड़े और सूचनाएं सेना और खुफिया एजेंसियों के लिए काफी महत्त्व रखते हैं। एमीसैट का उपयोग संचार संबंधी नेटवर्कों और मोबाइल सहित अन्य संचार उपकरणों की स्थिति के बारे में बताएगा। इसके अलावा, धरती के वायुमंडल की परतों के अध्ययन में इसका उपयोग होगा।

इसरो के लिए सोमवार बड़ी कायमाबी का दिन इसलिए भी रहा कि एमीसैट को कक्षा में सफलतापूर्वक स्थापित करने के बाद उसने अमेरिका, स्विटजरलैंड, स्पेन और लिथुआनिया के अट्ठाईस उपग्रहों को भी कक्षा में स्थापित कर दिया। इनमें सबसे ज्यादा चौबीस उपग्रह अकेले अमेरिका के ही हैं। पिछले कुछ सालों में भारत उपग्रहों को कक्षा में सफलतापूर्वक स्थापित करने वाला प्रमुख देश बन गया है। दो साल पहले सौ से ज्यादा उपग्रहों को एक साथ ले जाकर उन्हें कक्षा में स्थापित करने का इतिहास इसरो ने ही रचा था। इसके बाद से तो ब्रिटेन, फ्रांस, कनाडा, दक्षिण कोरिया, फिनलैंड जैसे देशों तक ने अपने उपग्रह छोड़ने के लिए भारत की सेवाएं लीं। इसका फायदा यह हुआ है कि दुनिया के अंतरिक्ष बाजार में भारत की साख बढ़ी है और इसी से कमाई के रास्ते भी खुले हैं। इसरो के लिए यह बड़ी सफलता इसलिए भी है कि पहली बार राकेट पीएसएलवी ने एक बार में सभी उपग्रहों को तीन अलग-अलग कक्षाओं में स्थापित किया है। एक वक्त था जब अमेरिका और रूस अंतरिक्ष में पहुंचने के करीब थे और भारत के वैज्ञानिकों के पास राकेट बनाने तक की भी बुनियादी सुविधाएं नहीं थीं। ऐसे में अगर आज भारत अमेरिका के उपग्रहों को अंतरिक्ष में ले जा रहा है तो यह कम बड़ी बात नहीं है।

वोट का विवेक

देश भर में राज्यों की विधानसभाओं या फिर राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले लोकसभा चुनावों के दौरान मतदाताओं के अलग-अलग हिस्से को प्रभावित करने और उनसे किसी खास उम्मीदवार या राजनीतिक पार्टी को वोट देने की अपील करने का चलन कोई नया नहीं है। अगर इस तरह की अपील सामाजिक सरोकार से जुड़े मुद्दों पर आधारित हो और जनता के सशक्तिकरण को लक्षित हो, तो इससे लोकतंत्र की बुनियाद को मजबूती मिल सकती है। लेकिन अगर किसी एक धार्मिक पहचान के नाते लोगों को किसी खास पार्टी को वोट देने की अपील जारी की जाती है तो इसके राजनीतिक संदर्भ एक स्वस्थ लोकतांत्रिक प्रक्रिया को कमजोर करते हैं। लेकिन हकीकत यही है कि देश में कहीं भी विधानसभा या फिर लोकसभा चुनाव आने के साथ कुछ धर्मगुरुओं की अहमियत बढ़ जाती है और अलग-अलग राजनीतिक दलों के नेता उनसे संपर्क साध कर लोगों को अपने पक्ष में वोट डालने की अपील जारी करने की गुजारिश करते देखे जाते हैं। ऐसा शायद इसलिए होता है कि इन धर्मगुरुओं का अपने अनुयायी तबकों पर खासा असर होता है और उनके कहने के मुताबिक कुछ हद तक लोगों के वोट डालने के फैसले भी प्रभावित होते देखे गए हैं।

इस लिहाज से देखें तो पिछले कुछ दशकों के दौरान हमारे देश में मुसलिम समुदाय के लिए कुछ स्थानीय धर्मगुरुओं या फिर उलेमाओं की ओर से किसी पार्टी को वोट देने की अपील जारी करने की खबरें सुर्खियों में रही हैं। यह अलग बात है कि इस तरह की अपीलों का वास्तव में मुसलिम आम जनता पर कितना असर पड़ता है। इसके बावजूद मुसलिम समुदाय की धार्मिक भावनाओं को ध्यान में रखते हुए ऐसे धर्मगुरु या फिर उलेमा समय-समय पर उनके लिए किसी मसले पर फरमान सुनाने से लेकर वोट देने तक की अपील करते रहे हैं। लेकिन जैसे-जैसे लोगों के बीच शिक्षा का प्रसार हुआ है, जागरूकता बढ़ रही है, राजनीतिक चेतना का विस्तार हो रहा है, वे अपने धर्म के किसी गुरु के कहने भर से वोट देने में विश्वास करना तेजी से कम कर रहे हैं। पिछले कई चुनावों के दौरान यह साफतौर पर देखा गया है कि अब लोग स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर देशहित को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर गौर करते हैं, उनमें देश का, समाज का और अपना हित-अहित देखते हैं और उसके बाद किसी राजनीतिक दल या उसके उम्मीदवार को वोट देने का फैसला करते हैं। जाहिर है, यह हमारे देश के लोकतंत्र की मजबूती के लिहाज से एक सकारात्मक बदलाव है।

हालांकि किसी धर्मगुरु के जरिए वोट डालने की अपील कराने का चलन केवल मुसलिम समुदाय के बीच सीमित नहीं रहा है। हिंदू धर्म की पहचान के तहत खड़े हुए कई पंथ और मत के वैसे गुरुओं और बाबाओं से भी राजनीतिक दल अपने पक्ष में वोट डालने की अपील कराने की कोशिश करते देखे गए हैं, जिनका अपने अनुयायियों पर काफी असर होता है। यों यह अपने आप में एक अफसोसजनक स्थिति है कि किसी भी धर्म या पंथ में विश्वास रखने वाले समुदाय को एक वोट बैंक की तरह देखा जाए और उनका वोट हासिल करने के लिए धार्मिक भावनाओं से जुड़े वैसे मुद्दों पर जोर दिया जाए, जिनसे लोगों के जीवन-स्तर में छाई जड़ता तो नहीं टूटती, उल्टे धर्म के नाम पर उनका भावनात्मक शोषण संबंधित धर्म के गुरु या बाबा के जरिए राजनीतिक दल करते हैं। इससे न तो धर्म मजबूत होता है, न समाज। अच्छा यह है कि अलग-अलग धार्मिक पहचान वाले आम नागरिक अब देश के राजनीतिक भविष्य को तय करने और सकारात्मक दिशा देने वाले वाले मुद्दों के महत्त्व की पहचान कर अपने विवेक से वोट देने निकल रहे हैं।

कल्पमेधा

जीवन में ऊंचा उठने के लिए पंखों की जरूरत केवल पक्षियों को पड़ती है। मनुष्य तो जितना झुकता है, उतना ही ऊपर उठता है।
-गौतम बुद्ध

दुनिया में दक्षिणपंथ का उभार

ब्रह्मदीप अलूने

आधुनिक प्रगतिशील युग में कई देशों में धुर दक्षिणपंथी राजनेता अपनी विभाजनकारी नीतियों के बल पर बेहद लोकप्रिय हो रहे हैं और उनके दल सत्ता पर काबिज भी हो रहे हैं। ऐसे में सबसे बड़ा संकट अल्पसंख्यक धार्मिक, नस्लीय और जातीय समूहों के सामने उठ खड़ा हुआ है।

विकास के उच्च प्रतिमान स्थापित करने की होड़ में आगे बढ़ता समाज इस समय गहरी निराशा, हताशा और वैचारिक संकीर्णता से जूझ रहा है। इसका प्रमुख कारण विभिन्न देशों में उभरती राजनीतिक सत्ताएं हैं जो अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए मध्ययुगीन जातीय, राजनीतिक, नस्लीय और धार्मिक वैचारिक द्वंद्व को पुनः स्थापित करने को प्रतिबद्ध नजर आ रही हैं। इसका प्रभाव पिछड़े, विकासशील राष्ट्रों से लेकर विकसित दुनिया में भी देखा जा सकता है।

यूरोप से जुड़ा मुसलिम बहुल देश तुर्की विकास और खूबसूरती के लिए पहचाना जाता है। हाल ही में वहां के राष्ट्रपति ने महज स्थानीय चुनावों में फायदा लेने के लिए न्यूजीलैंड के उन कथित वीडियो का सहारा लेने तक से गुरेज नहीं किया जिनमें एक दक्षिणपंथी मस्जिद में घुस कर मुसलिम धर्मावलंबियों को निशाना बनाते हुए दिख रहा है। तुर्की के राष्ट्रपति रैचेप तैयब अर्दोआन का अपनी राजनीतिक सत्ता को मजबूत करने के लिए देश के धर्मनिरपेक्ष ढांचे को ही निशाना बनाने के इन प्रयासों का न्यूजीलैंड ने भी विरोध किया और इसे समूचे क्षेत्र के लिए खतरनाक बताया। माना यह जा रहा है कि दक्षिणपंथी अर्दोआन ने यह वीडियो दिखा कर चुनाव को मुसलिम बनाम ईसाई का रंग देने की कोशिश की।

दरअसल, फ्रांस की क्रांति के बाद यूरोप में उदारवादी विचारधारा पनपी और यहीं से राष्ट्रवादी विचारधारा के साथ धर्मनिरपेक्षता के आदर्शों का बेहतर समन्वय भी हुआ। उदारवाद अठारहवीं सदी के बौद्धिक आंदोलन से प्रेरित था, जिसने असमानता और निरंकुशता का विरोध करते हुए संसदीय शासन और विधि के नियम को सर्वोपरि मान कर इसका समर्थन किया। इसके दूरगामी परिणाम विश्वभर की राजसत्ताओं पर पड़े और स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय के विचारों को मजबूती मिली। सभ्यता जब चरम पर पहुंच जाती है तो उसका पतन भी शुरू हो जाता है। अमेरिका सहित यूरोप, एशिया और अफ्रीका के कई देशों में बीते कुछ सालों से सत्ता का संक्रमण काल चल रहा है। मध्ययुगीन पुरातनवादी राजसत्ता अब राजनीतिक सत्ता के रूप में तेजी से लोकप्रिय हो रही है। ऐसे में विश्व समुदाय के सामने ऐसा संकट बढ़ता जा रहा है जिसके अनुसार सत्ता की संकीर्णता राष्ट्रवाद की आड़ लेकर समाज के सार्वभौमिक वैचारिक ढांचे को नष्ट करने का प्रयास कर रही है। इसका व्यापक असर समूची दुनिया पर पड़ सकता है और कई देशों में सांप्रदायिक तनाव की तीव्रता बढ़ कर उन्हें गृहयुद्ध की कगार पर ढकेल सकती है।

द्वितीय विश्व युद्ध में सभ्यता और संस्कृतियों के द्वंद्व के बाद परिवर्तनशील बौद्धिक क्रांति ने परंपरावादी, दक्षिणपंथी और धर्मांध समाज को मध्यमार्गीय उदारता से जोड़ने में अभूतपूर्व भूमिका निभाई, जिसके कारण संयुक्त राष्ट्र जैसे अभिकरण मानवता की रक्षा करने की दिशा में कामयाबी से आगे बढ़ते रहे। महाशक्तियों की आपसी कड़ी प्रतिद्वंद्विता में भी मध्यपूर्व के इराक जैसे इस्लामिक देश की राजनीतिक सत्ता में ईसाइयों का प्रभुत्व राष्ट्रवाद का संतुलन धर्मनिरपेक्षता के आदर्श से स्थापित करता हुआ प्रतीत होता था। तुर्की की पहचान भी धर्मनिरपेक्ष और उदार देश की रही है। लेकिन अब वहां दक्षिणपंथी राजनीति के उभार से सार्वभौमिकता पर संकट गहराने लगा है।

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा ने दुनिया को विभाजनकारी राष्ट्रवाद के खतरे से आगाह किया था। उन्होंने 2016 में अपने कार्यकाल के अंतिम विदेशी दौरे पर यूनान में ट्रंप की नीतियों पर निशाना साधा था। ओबामा ने दुनिया में साथ रहने की जरूरत पर बल देते हुए कहा था कि इस दुनिया का भविष्य इससे तय होगा कि हममें क्या समानताएं हैं, न कि उन बातों से जो हमें अलग करती हैं या संघर्ष की ओर ले जाती हैं।

अमेरिका में दक्षिणपंथी ट्रंप के उभार को वैश्विक संकट के रूप में देखा गया। ट्रंप की जीत के बाद उनकी जातीय और धार्मिक भेदभाव की नीति को लेकर ओबामा खुद आशंकित थे और उसे अमेरिका के वैश्विक स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों से जोड़ कर देख रहे थे। अब ट्रंप दुनिया के सबसे शक्तिशाली देश के राष्ट्रपति हैं और उनके नस्लवादी और मजहबी विचारों का प्रभाव पूरी दुनिया पर पड़ता दिखाई दे रहा है। अट्ठाईस साल के जिस ऑस्ट्रेलियाई नागरिक ब्रेंटन टैरंट ने न्यूजीलैंड के क्राइस्टचर्च शहर की दो मस्जिदों में गोलियां दागी थीं, वह भी अपने को ट्रंप का प्रशंसक बता रहा था।

यह भी बेहद दिलचस्प है कि धर्मांधता और असमानता में विश्वास करने वाला बेहद पढ़ा लिखा वर्ग तो है ही, इसके साथ ही ग्रामीण इलाके भी इस विचारधारा को पोषित कर रहे हैं। ट्रंप को पसंद करने वालों में पैंतालीस साल से लेकर वरिष्ठ नागरिकों का बाहुल्य है जो बेहद परंपरावादी होकर नस्लीय भेदभाव में विश्वास रखते हैं। अपनी विभेदकारी स्पष्ट नीतियों को लेकर ट्रंप अमेरिका की बुजुर्ग आबादी और ग्रामीण इलाकों में रहने वाले बेहद परंपरावादी समाज की एकमात्र पसंद के तौर पर उभरे हैं जिसे क्रुद्ध श्वेत भी कहा जाता है। ये लोग दुनिया भर के लोगों को अमेरिका में रहते देखना नहीं चाहते और अपने बच्चों के रोजगार के लिए भी विदेशियों को खतरा समझते हैं। न्यूजीलैंड में मस्जिद पर हमला करने वाले ऑस्ट्रेलियाई नागरिक ब्रेंटन टैरंट को भी क्रुद्ध श्वेत माना गया। उसने भी यूरोप के लिए प्रवासियों को खतरा ही माना है। जाहिर है, इन अति दक्षिणपंथी ताकतों को ट्रंप जैसे लोग मजबूत कर रहे हैं, वहीं कथित धार्मिक और जातीय समूह इसे धर्मयुद्ध के रूप में प्रचारित कर रहे हैं। इस विकासवादी युग में सभ्यता और संस्कृति की आपसी प्रतिद्वंद्विता बढ़ रही है, वहीं दक्षिणपंथी और उग्र-राष्ट्रवादी सत्ताओं का राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव भी बढ़ा है।

बदलते दौर में दक्षिणपंथी ताकतों ने न केवल वैधानिक सत्ता के जरिए व्यवस्था को परिवर्तित कर दिया है, बल्कि वे जातीय और धार्मिक समूहों के पैरोकार भी बन गए हैं। पाकिस्तान जैसे मजहबी देश में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा इसीलिए चुनौती बन गई है क्योंकि प्रभावी धार्मिक समूहों के सामने सत्ता कड़े कदम उठाने से बचती रही है। इन्हीं कारणों से कट्टरता आगे बढ़ कर आतंकवाद को बढ़ावा देने लगती है। ब्रिटेन की धुर दक्षिणपंथी ब्रिटिश नेशनल पार्टी के पूर्व सदस्यों ने 2011 में 'ब्रिटेन फर्स्ट' नामक संगठन की स्थापना कर नस्लीय दूरियां पैदा करने कोशिशें शुरू की थीं। ब्रितानी प्रधानमंत्री टेरेजा मे ने भी स्वीकार किया कि ब्रिटेन फर्स्ट नफरत फैलाने वाली बातें करता है जो झूठी होती हैं और तनाव पैदा करती हैं। यूरोप के सबसे बड़े मुसलिम बहुल राष्ट्र फ्रांस में साल 2017 के चुनावों में कोई दक्षिणपंथी सत्ता में न आ जाए, इसे लेकर अल्पसंख्यक गुट दहशत में नजर आए। इस प्रकार मैक्रों के दल को कई गुटों से समर्थन मिला। पेरिस की मस्जिदों ने मुसलमानों को मैक्रों को वोट देने के लिए आग्रह किया था। ब्राजील के हालात भी कुछ ऐसे ही हैं। इस समय वहां के राष्ट्रपति धुर दक्षिणपंथी जेयर बोल्सोनारो हैं। उन्होंने खुद को एक विभाजनकारी के रूप में साबित किया और नस्लवादी, समलैंगिक विरोधी और महिला विरोधी सोच को समाज के सामने रख कर चुनाव बड़े अंतर से जीता। उनकी विभाजनकारी नीतियां न केवल इस देश के लिए बल्कि पूरे महाद्वीप के लिए खतरा बन गई हैं।

आधुनिक प्रगतिशील युग में कई देशों में धुर दक्षिणपंथी राजनेता अपनी विभाजनकारी नीतियों के बल पर बेहद लोकप्रिय हो रहे हैं और उनके दल सत्ता पर काबिज भी हो रहे हैं। ऐसे में सबसे बड़ा संकट अल्पसंख्यक धार्मिक, नस्लीय और जातीय समूहों के सामने उठ खड़ा हुआ है। यदि दुनिया भर में स्थापित वैधानिक व्यवस्थाएं समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता नहीं दिखा सकीं तो इसके नतीजे बेहद घातक हो सकते हैं।

बाजार में भाषा

शोभा जैन

माना जाता है कि मनुष्य भाषा में जीता है। हम जिस समय में जी रहे हैं, वह विश्व-बाजारवाद का दौर है। हम आधुनिकता के अंत और उत्तर आधुनिकता की ओर अग्रसर एक ऐसे दौर में हैं, जिसमें समय मनुष्य का न होकर मशीन का है, उपकरण का है और नई-नई अवधारणाओं का है। हम सूचना के विस्फोट के ऐसे समय में हैं जब प्रचार के बड़े माध्यमों का भाषा पर दबदबा है। जिसके चलते आज वह जड़विहीन और तात्कालिक होती जा रही है- 'बोलो और भूल जाओ'! भाषा अब कलात्मकता के साथ बनाई जाती है। बाजार की सुविधा के लिए गढ़े जाने वाले शब्द जन्म ले रहे हैं। टेलीविजन पर उपभोक्ता सामग्री के विज्ञापनों में हम इस विरूपीकरण को देख रहे हैं, जिसमें अंग्रेजी और हिंदी की खिचड़ी से निर्मित अशुद्ध भाषा संपन्न परिवारों की जीवन शैली और मूल्यों को प्रदर्शित करती है। इनमें से अधिकांश का जीवन स्वार्थ, बर्बरता स्पर्धा और आत्मकेंद्रित भाव पर टिका होता है।

इसे भाषा की अशुद्धि कहें या खिचड़ी, इसमें वंचित जनता की मार्मिक स्थितियों की छवि नहीं दिखाई पड़ती। उनके जीवन के तनाव को नहीं देखा जा सकता। ऊपर से आधुनिक तकनीक से लैस व्यावसायिक और राजनीतिक कारखाने निर्मित हो रहे हैं, जिनमें हिंदी की भाषा चेतना की विकलांगता ने उसके अपने वास्तविक स्वरूप से और अधिक दूर कर दिया है। आज जहां साहित्य किताबों से निकल कर कंप्यूटर संजाल के पर्दे या शहरी और अर्द्धशहरी पाठकों द्वारा पढ़े जाने का शौक बन गया है, यथार्थ में कलावाद बाजारवाद बन गया। भवन, वेशभूषा, भोजन सब बदल चुके हैं। पित्जा भोजन हो गया है तो बर्गर नाश्ता। भाषा के माध्यम से बाजार को विकसित करने की धारणा ने भाषा की शुद्धता सृजनशीलता को थोड़ा असुरक्षित कर दिया है।

दुनिया मेरे आगे

भाषा की ऐसी गति बुद्धिजीवियों को कैसे शांत रख सकती है, जबकि सृजन की हर साहित्यिक विधा भाषा की कसौटी पर ही कसी जाती है। इससे समाज का दिशा-निर्देशन होता है। अभी तक दुनिया के जितने देश 'सुपर पॉवर' हैं, वे अपनी राष्ट्रीय भाषा में बड़े काम करते देखे जा सकते हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन और जापान जैसे 'सुपर पॉवर' अपनी भाषा अंग्रेजी, फ्रेंच या जापानी में ही चिंतन, खोज और काम करते हुए समृद्ध हुए हैं। सिर्फ भारत में कल्पना की जाती है कि यह देश भारतीय भाषाओं और खास कर हिंदी को किनारे रख कर 'सुपर पॉवर' बनेगा।

दरअसल, हमारे यहां 'औपनिवेशिक हैंगओवर' छाया हुआ है। इसकी एक वजह सांस्कृतिक आत्महीनता भी है। दूसरी कसर टेलीविजन पूरी कर देता है, जिसमें ऐसी लोकप्रियतावादी चीजें ज्यादा दिखाई जाती हैं, जिनके विज्ञापन से बाजार विकसित हो सके। फिर उसकी भाषा चाहे जो भी हो। केवल माल बेचने और गांव-कस्बों में नए बाजार बनाने के लिए हिंदी का जिस सुविधा के साथ प्रयोग हो रहा है, वह एक तदर्थ और व्यावहारिक उद्देश्य के लिए है, किसी व्यापार आदर्श, राष्ट्र निर्माण या बुनियादी परिवर्तन के लिए नहीं। कारोबार में भी किसी उच्च प्रशासनिक बैठक की बातचीत हिंदी में नहीं होती। विज्ञापन एजेंसियों में सारे विज्ञापन पहले अंग्रेजी में बनते हैं, बाद में जैसे-तैसे उनका कामचलाऊ हिंदी में अनुवाद कर दिया जाता है।

भाषा की यह दुर्दशा केवल बाजार में नहीं, राजनीति में भी है, जबकि लोकतंत्र में शपथ की भाषा अनुशासन है। साहित्य, विचार, दर्शन में भाषा जिस पवित्रता से जीती है, वहीं राजनीति में अपनी शुचिता खो देती है। भारत विश्व बाजार की तकनीकी से जुड़ तो रहा है, पर या तो केवल अंग्रेजी के माध्यम से या फिर बाजार के लिए जन्मी अपनी सुविधाजनक भाषा में। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की आधुनिक संचार साधनों में कोई उपस्थिति नहीं है। एक अंग्रेज अपनी भाषा के प्रति कितना चौकन्ना और संवेदनशील है, इस ओर भी चिंतन-अध्ययन की जरूरत है। निराशा तब ज्यादा होती है, जब भाषा को सभ्यता का प्रतिनिधि और आदर्श बनाने वाले लेखक, पत्रकार, साहित्यकार निशब्द या मूक बन जाते हैं। मीडिया खुद 'हॉट न्यूज', 'ब्रेकिंग न्यूज' के नाम पर टीआरपी बढ़ाने की कोशिश में भाषा के इस पतन को लेकर आलोचना तक नहीं करता। क्यों अब तक सभ्य भाषा के प्रयोग पर कोई सख्त बयान जारी नहीं किया गया। सत्ता पक्ष की राजनीति करने वालों को सोचना होगा कि लोकतंत्र की मर्यादा और भाषा की रक्षा कैसे की जाए।

समाज और संस्कृति से भाषा की हालत का गहरा संबंध है। हम किसी भाषा को किस दृष्टि से देखते हैं और उसका कैसा उपयोग करना चाहते हैं, यह बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है कि हमारी सांस्कृतिक सोच क्या है, समाज के बारे में हमारी दृष्टि और भूमिका क्या है। भारत की विशाल अल्पशिक्षित और साधनहीन जनता, खासकर भावी पीढ़ी अपनी जरूरतों के साधनों की पूर्ति के साथ अपनी दिनचर्या मौज-मस्ती उपभोग को टेलीविजन पर बाजारीकरण की भाषा के माध्यम से देख रही है। यह वैश्विक बाजार में हिंदी भाषा की कुल भूमिका है। इस पर भाषा वैज्ञानिकों, चिंतकों, हिंदी सेवियों के साथ नीति-निर्धारकों को भी गंभीरता से ध्यान देने की जरूरत है।

जल बिन कल

हर साल विश्व जल दिवस मनाने का उद्देश्य समस्त विश्व को पेयजल की उपलब्धता और जल संरक्षण के महत्त्व के प्रति जागरूक करना है। हम सब जानते हैं कि पृथ्वी की 75 प्रतिशत सतह जल से घिरी हुई है लेकिन इसका 97 प्रतिशत जल समुद्री है और पीने योग्य जल केवल तीन प्रतिशत है। आज जिस गति से हम पानी का बिना सोचे-समझे उपयोग कर रहे हैं उससे वह दिन दूर नहीं जब हम और हमारी भावी पीढ़ी एक-एक बूंद के लिए तरसें। जैसे-जैसे गर्मी नजदीक आ रही है, सूखाग्रस्त और रेगिस्तानी इलाकों में लोगों को पानी की चिंता सताए जा रही है।

आज चाहे शहर हो या गांव, हर जगह स्वच्छ जल की किल्लत है। विडंबना देखिए कि जहां जल की पर्याप्त उपलब्धता है वहां लोग इसके संरक्षण के प्रति गंभीर नहीं हैं। गर्मियों में जल की अधिक जरूरत केवल मानव को नहीं, अन्य वन्य प्राणियों और पशु-पक्षियों को भी होती है। लिहाजा, हमारा दायित्व बनता है कि अपने साथ उनके लिए भी पर्याप्त पानी का प्रबंध करें। लेकिन यह तभी संभव होगा जब हम स्वयं जल संरक्षण के प्रति जागरूक होंगे। चुनावी मौसम में नेताओं द्वारा अनेक लोकलुभावन वादे और जुमले उछाले जा रहे हैं लेकिन पर्यावरण और जल संरक्षण की ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा। अब स्वयं जनता को ही जागरूक होना होगा।

हम अपनी दिनचर्या में पानी की बर्बादी रोक कर और बरसाती पानी का पर्याप्त भंडारण करके इसका उपयोग दूसरे मौसम में कर सकते हैं। तालाबों और बावड़ियों की उचित देखरेख कर वर्षा जल का संरक्षण कर जल संकट को थोड़ा कम किया जा सकता है। घरों की छतों से पाइप लगा कर बरसात के पानी को कुंडी (जमीन के अंदर कमरा) में संरक्षित किया जा सकता है। अधिकांशतः हमारे समाज में भ्रांति व्याप्त है कि बरसात का पानी पीने योग्य नहीं होता और इस तरह सारा वर्षा जल हम व्यर्थ बहा देते हैं जबकि वैज्ञानिकों के अनुसार वह जल शुद्ध व पीने योग्य होता है। मानसून की पहली बारिश के जल को संरक्षित नहीं करना चाहिए क्योंकि उसमें छतों पर जमी धूल व कचरा होता है। हम सभी को मिलकर पानी का दुरुपयोग को रोकना होगा। हमें नहीं भूलना चाहिए कि बिना जल नहीं है कल!

● *श्रीनिवास पंवार बिश्नोई, नोखा, राजस्थान*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

समय पर संन्यास

लालकृष्ण आडवाणी और मुरली मनोहर जोशी जैसे वयोवृद्ध नेताओं को लोकसभा चुनाव न लड़ाने का भारतीय जनता पार्टी का निर्णय उचित ही लगता है। वैसे सर्वोत्तम तो यह रहता कि क्रमशः 91 और 85 वर्षीय ये सम्मानित नेता स्वयं राजनीतिक संन्यास के लिए प्रस्तुत होते। 1977 में महज 61 वर्षीय नानाजी देशमुख ने मोरारजी भाई के मंत्रिमंडल में शामिल होने का निमंत्रण यह कहते हुए ठुकराया था कि 60 वर्ष की आयु के बाद राजनेताओं को समाज सेवा के प्रकल्पों में खुद को लगाना चाहिए।

दुनिया में ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं, जब विख्यात राजनेताओं ने अपने लिए ठीक समय चुन कर राजनीति, या कम से कम सरकारी पद त्याग दिया। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने 81 वर्ष की आयु होने पर 1955 में अपना पद त्याग दिया था। फ्रांस के राष्ट्रपति चार्ल्स दिगॉल ने 79 वर्ष के होने पर 1969 में इस्तीफा दे दिया था। इसी कड़ी में इंडोनेशियाई राष्ट्रपति अहमद सुकर्ण तो 70 साल की आयु में 1968 में पद छोड़ गए।

भारतीय परंपरा में संन्यास का महत्त्व सर्वविदित है पर इन विदेशी राजनेताओं ने उसका पालन कर उदाहरण प्रस्तुत किया। आडवाणीजी और जोशीजी के लिए भी अवस्थानुसार अपनी पारी घोषित करने का वक्त काफी पहले आ गया था।

● *अजय मित्तल, मेरठ*

सुरक्षा का तकाजा

भारत द्वारा उपग्रह रोधी प्रक्षेपास्त्र का सफल परीक्षण सामरिक लिहाज से भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि हम पाकिस्तान जैसे दुश्मन और चीन जैसे चालबाज देशों से घिरे हैं। ऐसे में भारत का तकनीकी रूप से एक कदम आगे रहना ही उचित है। सब जानते हैं कि अमेरिका का अफगानिस्तान से मोहभंग हो चुका है और वह नाटो सेना के साथ जल्द ही वहां से रवाना होने वाला है। अमेरिका की अनुपस्थिति में वह तालिबान फिर हावी हो सकता है जिसका नियंत्रण काफी हद तक पाकिस्तान के हाथ में है। ऐसा कमजोर नेतृत्व वाला परमाणु शक्ति संपन्न पाकिस्तान भविष्य की एक अत्यंत खतरनाक तस्वीर पेश करता है।

आज पूरी दुनिया के वैज्ञानिक इस बात से चिंतित हैं कि पाकिस्तान के परमाणु हथियार कभी भी आतंकियों या कट्टरपंथियों के हाथ लग सकते हैं। ऐसे में भारत का नवीनतम सामरिक तकनीकों से लैस होना अत्यंत जरूरी है ताकि हम उस समय की परिस्थितियों से निपट सकें। वैसे भी पाकिस्तान की सेना व राजनीतिक नेतृत्व गाहे-बगाहे भारत को परमाणु शक्ति संपन्न देश होने के नाम पर ब्लैकमेल करने की कोशिश करता रहता है। मिशन शक्ति की सफलता से इस बात की पूरी संभावना है कि उसकी ब्लैकमेलिंग का यह क्रम अवश्य थमेगा।

● *राकेश सैन, वीपीओ लिदड़ां, जालंधर*

नई दिल्ली

मतदान से